भारतीय संगीत में ध्रुवागान का स्वरूप

सर्वेश शर्मा
शोध छात्र, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

भारतीय संगीत के इतिहास में गीतों के कई प्रकार पाए जाते हैं जो समय के साथ-साथ बदलते रहे हैं उनमें से एक प्रकार ध्रुवागान है। वस्तुत: संगीत की विशेषताओं एवं मूलभूत प्रवृत्तियाँ को समझाने के लिए हमें पूर्ववर्ती इतिहास में जाना नितान्त आवश्यक है। गीत के क्षेत्र में नाट्यशास्त्र का सबसे बड़ा अवदान ध्रुवा गीत है। भरत मुनि का मुख्य उद्देश्य नाट्योपयोगी तत्वों का विवेचन करना है और इस दृष्टि से अभिनव गुप्त के शब्दों में ध्रुवागीत तो नाट्य प्रयोग के प्राणभूत हैं-'प्राणभूतं तावत् ध्रुवागानं प्रयोगस्य'[1] इसी कारण नाट्यशास्त्र में ध्रुवा गीतों के विषय में सर्वाधिक विस्तार से चर्चा की गई है। इसके 32वें अध्याय का नाम ही ध्रुवाध्याय है। गीत का आधारभूत नियत पद समूह ध्रुवा कहा जाता है। 'ध्रुवा गीत्याधारो नियत: पदसमूह:।' किन्तु भरत ने ध्रुवा शब्द का अर्थ-विस्तार करते हुए सभी प्रकार के गीतों को ध्रुवा ही माना है। वे कहते हैं 'नारद इत्यादि द्विजों ने अनेक प्रकार से जिन गीतांगों का प्रयोग किया है उन सबकी संज्ञा ध्रुवा हैं।'[2] जा ऋचाएं, पणिका एवं गाथाएं, जो सप्त रूप के अंग प्रमाण है उन सबकी संज्ञा ध्रुवा है। इनमें वाक्य, वर्ण, यति, पाणि और लय के अविचल रूप से सम्बद्ध रहने के कारण ही इन्हें ध्रुवा कहा गया है। ये गीत विभिन्न छन्दों से निमित्त हैं तथा इन्हीं अंगों में उद्धृत होकर ध्रुवा क स्वरूप को प्राप्त करते हैं।[3] एक वस्तु में निबद्ध गीत को ध्रुवा कहते हैं, दो वस्तु में निबद्ध गीत को परिगीतिका, तीन वस्तु में निबद्ध गीत को मद्रक तथा चार वस्तु में निबद्ध गीत को चतुष्पदा कहते हैं।

एक वस्तु ध्रुवा ज्ञेया द्विवस्तु परिगीतिका।
त्रिवस्तु मद्रकं ज्ञेयं चतुर्वस्तु चतुष्पदा।।[4]

ध्रुवागान के भेद-विभिन्न अवस्थाओं पर निर्भर रहने वाली ध्रुवाओं के पांच प्रभेद किए जाते हैं ये हैं-1. प्रावेशिकी 2. नैष्क्रमिकी 3. आक्षेपिकी 4. प्रासादिकी 5. अन्तरा ध्रुवा।[5]

1. प्रावेशिकी ध्रुवा-विभिन्न पात्रों के रंगमंच पर प्रवेश के अवसर पर जो रसा तथा अर्थों से पूर्ण विषयों का गान किया जाए उसे प्रावेशिकी ध्रुवा कहते हैं। नाट्यार्थ तथा प्रमुख रस से सम्बंधित गीत वस्तु यहां रखी जाती है। इस कारण इसका नाम भी अन्वर्थक है। यहां प्रवेश शब्द से ही जहां प्रविष्ट होने वाले पात्र के रस, भाव, अवस्था, जाति, कार्य आदि का अभिधान इष्ट है वहीं इससे नाट्य के प्रधान रस तथा कथा का संकेत भी रसमय रूप में हो जाता है।

1 नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन, डॉ. पुरु दाधीच, पृ० 40
2 वही
3 नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन, डॉ. पुरु दाधीच, पृ० 40
4 नाट्यशास्त्रम् चतुर्थो भाग:, पृ० 288
5 Journal of the Indian Musicological Society, Vol. 21 June & Dec. 1990, Page-1

2. नैष्क्रामिकी ध्रुवा – जब किसी अंक की समाप्ति के अवसर पर पात्रों के निष्क्रमण (प्रस्थान) के समय ऐसा गान किया जाए जिससे पात्रों के प्रस्थान का प्रयोजन संयुक्त रहे तो उसे नैष्क्रामिकी ध्रुवा कहा जाता है। यदि पात्र का निष्क्रमण अंक के मध्य में आता हो तो उस समय भी इस ध्रुवा का संयोजन विशेष दशा में नाट्याचार्य दक्षता में रख सकते हैं।

3. आक्षेपिकी – जो ध्रुवा नाट्य प्रयोक्ताओं के द्वारा निर्दिष्ट क्रम या नियम का परित्याग कर केवल द्रुत लय में रखी जाए उसे आक्षेपिकी ध्रुवा कहते हैं। इसकी योजना प्राय: पात्र के आकस्मिक पतन, रोग ग्रस्तता, मृत्यु की स्थिति आदि दशाओं में रखी जाती है।[1]

4. प्रासादिकी – जो किसी प्राप्त आकस्मिक दुर्घटना के बाद तुरन्त गीत रूप में प्रस्तुत होकर रसान्तर की आक्षेप या संकेतों द्वारा हटाकर रंगस्थ प्रेक्षकों के चितों को प्रसन्न करती हो उसे प्रासादिकी ध्रुवा समझना चाहिए। नाटकीय कथावस्तु की अनुरुपता की दृष्टि में रखकर इसकी योजना किसी भी प्रसंग तथा स्थान पर रखी जा सकती है।

5. अन्तरा – विभिन्न पात्रों के विषण्ण होने, विस्मृत होने, क्रुद्ध होने सोने, मत्त होने, युद्ध करने, अधिक भार से शरीर के भारी या खिन्न होने, मूर्च्छित होने, पृथ्वी पर गिरने, विष प्रयोग से मूर्च्छित होने, भ्रान्त हो जाने, वस्त्रालंकारों के धारण करने तथा दोष के आच्छादन करने के अवसर पर जो ध्रुवा गान होता है उसे अन्तरा ध्रुवा कहते हैं। जो किसी पात्र की स्मरण के क्षीण होने पर या पात्र के वेषभूषा या वस्त्रों में से किसी वस्तु के गिरने को दर्शाती है।[2]

ध्रुवागान के प्रकार – ध्रुवागान को अन्य छ: प्रकार से भी विभाजित किया गया है। ये हैं – 1. शीर्षका, 2. उद्धता 3. अनुबन्धा 4. विलम्बिता 5. अड्डिता 6. अपकृष्टा ।

1. शीर्षका – ध्रुवाओं में शीर्ष अर्थात् प्रमुख स्थान रखने वाली ध्रुवा शीर्षका कहलाती है।

2. उद्धता – उद्धता प्रकार से गाई जाने वाली ध्रुवा ही उद्धता है।

3. अनुबन्धा – जो ध्रुवा किसी नाट्योपचार या प्रयोग से आरम्भ होती हो तथा जिसमें उसी के लिए निर्धारित लय का प्रयोग किया गया हो ऐसी ध्रुवा को अनुबन्धा कहा जाता है।

4. विलम्बिता – जिसमें नाट्यधर्मी परम्परा के अनुसार अतिशय वेग से कोई क्रिया न हो उसे विलम्बिता ध्रुवा समझना चाहिए।

5. अड्डिता – जब श्रृंगार रस को लेकर कोई ध्रुवा का आरम्भ हो और उसमें कुछ उत्कृष्ट गुण हो तो प्रसन्न करने वाली ऐसी ध्रुवा को अड्डिता कहा जाता है।

1 Journal of the Indian Musicological Society, Vol. 21 June & Dec. 1990, Page-1
2 वही

6. अपकृष्टा – किसी अन्य भाव को या अन्य कारणों को जो आरम्भ किए गए भाव या कारणों से भिन्न हो आकृष्ट करते हुए जिस ध्रुवा का गान किया जाए उसे अपकृष्टा ध्रुवा कहते हैं।

ध्रवागान के अंग – विविध छन्दों से निर्मित एवं काव्यत्व सम्पन्न पंचविध ध्रुवाओं के सदा निम्न अंग रहते हैं – 1. मुख 2. प्रतिमुख 3. वैहायसक 4. स्थित, 5. प्रवृत्त 6. वज्र 7. सन्धि 8. संहरण 9. प्रस्तार 10. उपवर्त 11. माषघात 12. चतुरस्त्र 13. उपपात 14. प्रवेगी 15. शीर्षक 16. सम्पिष्टक 17. अन्ताहरण और 18. महाजनिक।[1]

यद्यपि ये सामान्य रूप से समस्त ध्रुवाओं के अंग हैं तदपि भरत मुनि ने प्रावेशिकी आदि पंच ध्रुवाओं में प्रधान रूप से किन अंगों की योजना की जाए यह भी निर्दिष्ट किया है जो इस प्रकार है –

प्रावेशिकी ध्रुवा में प्रवृत्त, उपवर्तन, वज्र तथा शीर्षक, अड्डिता ध्रुवा में प्रस्तार, माषघात, महाजनिक, प्रवेणी तथा अवपात अवकृष्टा ध्रुवा में मुख तथा प्रतिमुख, स्थिता ध्रुवा में वैहायसक तथा अन्ताहरण और अन्तरा ध्रुवा में सन्धि तथा प्रस्तार। इनके अतिरिक्त पद और वर्ण की समाप्ति पर आने वाले गीतकाव्य चार है जिनके नाम हैं – वृत्त, विवध, बिदारी एवं एकक। उत्तम प्रकृति के पात्रों के लिए विदारी, मध्यम प्रकृति के पात्रों के लिए विवध तथा अधम प्रकृति के पात्रों के लिए एकक अंग का प्रयोग रखा जाता है।[2]

ध्रुवागान की भाषा – ध्रुवागान में मुख्यत: तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग मिलता है – संस्कृत, शौरसेनी तथा निरर्थक।[3] सामान्यत: ध्रुवाओं में शौरसेनी भाषा का प्रयोग किया जाता है। कभी कभी मागधी भाषा में भी ध्रुवाओं की योजना की जाती है, विशेषकर जबकि वे नत्कुटक वर्ग में बनाई जाती है। दिव्य पात्रों की दशा में संस्कृत भाषा में ध्रुवा गीतों की रचना इष्ट है तथा मानव पात्रों की दशा में अर्ध संस्कृत भाषा को ही प्रयुक्त किया जाना चाहिए। निरर्थक शब्दों के योग से निरर्थक ध्रुवा का प्रयोग होता है। भले ही पद निरर्थक हों लेकिन इनमें बंदिश की संरचना, लय तथा ताल योजना निर्धारित होती है। जैसे 'दिंग्ले दिंग्ले दिंग्ले दिंग्ले – जम्बुक पलितक तेते चाम्।'[4]

ध्रुवागान के छन्द – भरत मुनि कहते हैं कि जो पद निबद्ध प्रकार के हैं तथा जो छन्दों के निर्धारित नियमानुसार ही अक्षरों से निर्मित हैं उन्हें ही ध्रुवा समझना चाहिए। सभी ध्रुवाओं में तीन प्रकार के वृत्त रहते हैं – 1. गुरु बहुल या सर्व गुरु 2. लघु बहुल या सर्व लघु 3. गुरु – लघु मिश्र।

1 नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन, डॉ. पुरु दाधीच, पृ० 43

2 नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन, डॉ. पुरु दाधीच, पृ० 43

3 Journal of the Indian Musicological Society, June & Dec. 1990, Page-1

4 The treatment of musical composition in the Indian Textual Tradition. Dr. Premlata Sharma, JIMS Vol. 21, 1990, page, 2

सर्वासामेव जातीनां त्रिविधं वृत्तमुच्यते।
गुरुप्रायं लघुप्रायं गुरुलध्वक्षरं तथा।।[1]

इनमें से गुरु अक्षरों वाली अवकृष्टा ध्रुवा, अधिकांश भाग में लघु अक्षर रखने वाली द्रुता ध्रुवा तथा शेष ध्रुवाओं में गुरु लघु मिश्र अक्षर वाले वृत्त होते हैं। जो अत्युक्ता प्रतिष्ठा मध्या तथा गायत्री नामक जाति के छन्द हैं वे स्थितापकृष्टा ध्रुवा में रखे जाते हैं जो युग्म प्रकार के छन्दों के वर्ग या जाति है उन्हें प्रासादिकी ध्रुवा में रखा जाता है। इनके नाम हैं–उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती तथा पंक्ति। द्रुता ध्रुवा में प्रयुक्त होने वाले छन्दों की जातियां हैं–अनुष्टुप, बृहती, जगती विलम्बिता, द्रुता चपला, उद्गता तथा धृति। प्रावेशिकी ध्रुवा में उद्धत चरित्रों के लिए प्रयुक्त होने वाले छन्दों की जातियां हैं–पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, अति जगती तथा शक्वरी। नाट्य शास्त्र के 32वें अध्याय में इन जातियों के 115 छन्दों के लक्ष्ण, उदाहरण राहित प्रमाण आदि का विस्तार से वर्णन दिया है।

ध्रुवा गीतों में नाना वृत्तों में रहने वाले शीर्षकों का भी भरत ने विस्तार से वर्णन किया है। शीर्षक में चार पद होते हैं और प्रत्येक पाद चार–चार गण का होता है। शीर्षक के एक पाद में 21 से 26 अक्षरों का समुदाय रहता है अत: जहां पूर्वार्ध के एक पाद में चार ह्रस्व गण, चार मिश्र गण और अन्त में शेष लघु वर्ण रहें तो वह शीर्षक होगा।[2] इसी प्रकार ध्रुवाओं के अन्त में रहने वाले तीन संयोग या स्थितियां होती हैं–1. सर्व दीर्घ 2. सर्व लघु तथा 3. लघु गुरु मिश्रित। इनमें स्थिता ध्रुवा ओघ अंश में गुरु अक्षरों वाली तथा द्रुता अधिकांश में लघु अक्षरों वाली एवं प्रासादिकी व अन्तरा ध्रुवाएं मिश्रित संयोग वाली होती हैं। इसी प्रकार नर्कुटक ध्रुवा की भरत ने आठ जातियां पृथक से बताइ हैं जिनके नाम हैं–1. रथोद्धता, 2. बुदबुदक 3. उद्गता 4. वंशपत्र 5. प्रतिताक्षरा 6. ध्वजवती 7. हसास्य 8. तोटक।[3] इसी तरह खंजक के भी तीन भेद बताए गए हैं–1. प्रमोद 2. भाविनी और 3. मत्तचेष्टित, ये सभी ध्रुवाएं समवृत्ता और विषमवृत्ता इन दो प्रकार की हाती है। समवृत्ता के भी समा, अर्धसमा और विषमा भेद होते हैं।[4]

ध्रुवागान का स्थान–ध्रुवाओं का द्विविध स्थान भरत ने दर्शाया है–1. आत्मस्थ 2. परस्थ, इनमें से जब स्वयं को लक्ष्य कर गीत या ध्रुवा गान रहे तब आत्मस्थ और दूसरे की उद्दिष्ट कर ध्रुवा गान किया जाए तो परस्थ होता है।[5] ध्रुवाओं के विषय या आश्रय की चर्चा करते हुए कहा जा सकता है कि स्त्री या पुरुष पात्रों की उत्तम मध्यम या अधम प्रकारों की स्थिति में उनके अनुरुप गुणों की समानता को ध्यान में रखते हुए ध्रुवाओं के विषय या आश्रय रखे जाने चाहिए। जैसे–सिद्ध, गंधर्व तथा यक्षों की उपमा वृषभ आदि से तथा तपस्वियों की सूर्य और अग्नि से दी जाती हैं। देवों का औपम्य विद्युत, उल्का व सूर्य आदि से तथा देवों के समान ही प्रतापी राजा का भी इन्हीं पदार्थों से या सिंह और गजराज से

1 नाट्यशास्त्रम्, चतुर्थो भाग:, पृ० 301
2 नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन, डॉ० पुरु दाधीच, पृ० 44
3 नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन, डॉ० पुरु दाधीच, पृ० 44
4 वही
5 वही

रखते हैं। उत्तम पुरुषों की राजहंस या मत्त गज से तुलना की जाती है मध्यम की उनके अनुरुप सारस, मयूर, क्रौंच पक्षी तथा पद्मखण्डों से तथा अधम पात्रों की कोकिल, भ्रमर, बगुला, काक, कादम्ब जैसे पक्षी से रखी जाती है। इसी प्रकार उत्तम स्त्रियों में राजरानी की तुलना पृथ्वी ज्योत्सना नदी आदि से मध्यम स्त्री जन तथा वैश्य आदि वर्णों की स्त्रियों की तुलना लता, दीर्घिका, टिट्भी आदि से और अधम स्त्रियों की भ्रमरी, क्रौंची, कोकिला, कौवी आदि से करने वाली ध्रवाएं नाट्य प्रयोग में यथावसर रखी जाती हैं।[1]

ध्रुवागान के अवसर-ध्रुवा गीतों के अनुकूल समय तथा प्रदेश का विवरण नाट्यशास्त्र में इस प्रकार दिया गया है-पूर्वान्ह में घटने वाली किसी घटना की सूचना देने के लिए प्रावेशिकी ध्रुवा का गान किया जाता है। दिन रात में सामान्यतः अपने समय के अनुसार होने वाले कोई भी कार्य नैष्क्रामिकी ध्रुवा के द्वारा सूचित किए जा सकते हैं। पूर्वान्ह को सूचित करने के लिए सौम्य ध्रुवाओं का गान करना चाहिए और करुण ध्रुवाओं के गान द्वारा अपरान्ह या संध्या काल को संकेतित किया जाता है। पात्र के गाने के विषय में जो भी सूचनाएं देना हो उन्हें प्रावेशिकी ध्रुवा के द्वारा अभिव्यक्त करना चाहिए और जो विषय किसी स्थावर पदार्थ स सम्बद्ध हों उन्हें आक्षेपिकी ध्रुवा के द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। सभी आक्षेपिका ध्रुवाओं का गान द्रुत लय में और ठीक उसी तरह विलम्बित लय में भी किया जा सकता है। इसलिए कि इन ध्रुवाओं की उत्पत्ति जैसे रोष या अमर्ष में होती है उसी तरह शोक अद्भुत या भयानक रस में भी हो सकती है।

ध्रुवाओं के इस विस्तृत विवरण से विदित होता है कि ये ध्रुवा गीत किसी नाट्य प्रयोग में विभिन्न पात्रों के क्रिया कलापों और भावावस्थाओं के संकेतित करने वाले पृष्ठ संगीत के रूप में प्रयुक्त होते थे और इनकी संकेतात्मकता को जिस प्रकार गीत के विषयों से प्रवहण प्राप्त होता था ठीक वैसे ही उनके छन्द, भाषा, लय और ताल से भी, ध्रुवाओं का अनुसरण करती दो वीणाएं उनकी संकेत शक्ति में वृद्धि करती थी। संस्कृत के नाट्य रचनाकार शास्त्रों के अनेक विधि निषेदों से प्रतिबंधित थे। जिस मंच पर पर्दे न हों, दृष्य सज्जा न हो, युद्ध शापादिक अनेक क्रियाओं के प्रत्यक्ष प्रस्तुतिकरण की अनुमति ना हो वहां कक्ष्या विभाग आदि नाट्य धर्मों रुढ़ियों की संकेत शक्ति के सहारे से कथावस्तु का विकास करते हुए अभिनेता को ये ध्रुवाएं न केवल सहयोग ही प्रदान करती हैं अपितु नाट्य प्रयोग को सौन्दर्य से अभिमण्डित भी करती है। स्वरों के अमृत रस से अभिषिक्त ये ध्रुवाएं नाट्य सूचनाओं के नीरस पाठ से अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। नारद, स्वाति, तुम्बरू आदि के द्वारा प्रचारित गान्धर्व या मार्ग संगीत से अनुप्रेरित होकर भी नाट्य के प्रसंग में ही स्वतंत्र रूप से पल्लवित ध्रुवा गान स्वर, लय, शब्द के साथ ही विशेष रूप से अभिनय से पोषित होकर अन्य गीति प्रकारों से अधिक लोकप्रिय हो गए और नाट्य प्रयोग से पृथक भी अपना अस्तित्व स्थापित करने में समर्थ हुए। ध्रुव नाम प्रबन्ध भी उसी ध्रुव गीत का रूपान्तर था और वर्तमान युग में भी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के ध्रुवपद तथा कर्नाटक पद्धति के दरु गीत उसी ध्रुवागान की समृद्ध परम्परा के जीवन्त प्रतिनिधि हैं।

1 नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन, डॉ० पुरु दाधीच, पृ० 45

ध्रुवा गीतों में रस योजना–यूं तो ध्रुवा गान नाट्य के साथ प्रयोग किया जाता था इनका उद्देश्य भी नाट्य के रस को बढ़ाना था। भरत ने विभिन्न रसों के लिए अलग–अलग ध्रुवा तथा उनमें प्रयुक्त लय का संकेत दिया है। भरत ने स्पष्ट रूप से लिखा है सभी ध्रुवाएं रस भाव से पूर्ण होती हैं। उनको उसी रस के अनुसार प्रत्यन पूर्वक गाना चाहिए।[1] बद्ध निरुद्ध मूच्छिर्त व्याधित, मृत्यु आदि के स्थलों पर अवकृष्टा ध्रुवा का गान करना चाहिए इसका रस करुण है।[2] उत्सुकता, चिन्ता, परिदेवन तथा श्रम इसमें दैन्य भाव को दिखाने वाली स्थिता ध्रुवा का गान करना चाहिए इनमें भी करुण रस है।[3] उत्पात, अद्भुत दर्शन, विषाद, रोष, वीर, रौद्र तथा भय इन रसों को प्रकट करने के लिए द्रुत लय में ध्रुवा का गान करना चाहिए।[4] हर्ष, श्रृंगार में रस प्रधान है उसमें प्रासादिकी ध्रुवा का मध्य लय में प्रयोग करना चाहिए।[5] अन्तरा ध्रुवा का प्रयोग रोष, शरीर में कोई रोग आदि भाव को दर्शाने के लिए अन्तरा ध्रुवा का प्रयोग द्रुत लय में किया जाता है।[6] इस प्रकार विभिन्न रसों के साथ ध्रुवाओं का सम्बंध निदेर्शित किया गया है।

ध्रुवा गीतों का वर्ण विषय–ध्रुवा गीतों के वर्ण विषय की बात करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि ध्रुवा गीतों में विविध विषय हैं चूंकि ध्रुवाओं का प्रयोग मुख्य रूप से नाट्य के साथ ही होता था इसलिए नाट्य के कथानक के अनुसार उसी भाव और रस को बढ़ाने वाले विषय की ध्रुवा गीत का गायन किया जाता था। इसलिए अधिकतर ध्रुवा गीत प्रकृतिक चित्रण युक्त हैं जो कि श्रृंगारिक हैं। नाट्य का प्रारम्भ ईश्वर वन्दना से होता था प्रावेशिकी ध्रुवा का सम्बंध ईश्वर स्तुति थी। नाट्य के प्रारम्भ में सूत्रधार चारों दिशाओं में घूम कर देवताओं की स्तुति करता था। –'देवं शर्वमीशं वंदे'[7] ईश वन्दना का उदाहरण है इसी प्रकार 'शंकर : शूलधृत पातु मां लोककृत' इस ध्रुवा गीत में भगवान शिव की स्तुति करते हुए उनसे रक्षा की प्रार्थना की गइ है।[8] इस तरह के गीतों को एकत्र कर स्वतन्त्र शोध करना अभी अपेक्षित है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि ध्रुवा गीतों का साहित्य उनके छन्द, लय, ताल आदि का विवरण तो नाट्यशास्त्र में मिलता है परन्तु उनके स्वररूप तथा स्वरलिपि पद्धति में लिखित रूप प्राप्त नहीं होता। आज क्रियात्मक रूप से ध्रुवा के गान को प्रस्तुत करना तो सम्भव नहीं लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से ध्रुवागान का बहुत महत्त्व है क्योंकि इनमें पूर्ववर्ती प्रचलित संगीत सामगान तथा उत्तरवर्ती ध्रुपद शैली के गान का शास्त्रीय रूप में दर्शन होता है।

1 ध्रुवाणां चैव सर्वासां रसभावसमन्वितं। ना. शा. 32.316
2 ध्रुवाणां चैव सर्वासां रसभावसमन्वितं। ना. शा., 32.318
3 वही, 32.320
4 वही, 32.322
5 वही, 32.325
6 वही, 32.326
7 ना. शा., 32.48
8 ना. शा., 32.50

जिस तरह यज्ञों में सामगान का प्रयोग हाता था उसी प्रकार नाट्य में ध्रुवा गान का व्यवहार था। उस समय इनके गान की तकनीक तथा विभिन्न प्रकारों के अभ्यास पर बल दिया गया। भरत ने स्पष्ट रूप से कहा है–कि सर्वप्रथम गीत का ही प्रयत्नपूर्वक गान करना चाहिए क्योंकि गीत ही नाट्य की शैय्या है। यदि गीत तथा वाद्य संयुक्त नाट्य को प्रस्तुत किया जाएगा तो कभी भी विपत्ति नहीं आएगी।[1] इस प्रकार निसंदेह ध्रुवागान, सामगान तथा पश्चात्वर्ती प्रबन्धगान के बीच की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मिश्र पंडित विजयशंकर, तबला पुराण, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–2005

शुक्ल योगमाया, तबले का उद्गम, विकास और बादन शैलियाँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1987

पैतल गीता, पंजाब की संगीत परम्परा, राधा पब्लिकेशन्ज़ नई दिल्ली, 2001

चौबे, सुशील कुमार, संगीत के घरानों की चर्चा, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982

शर्मा प्रियंका, अवनद्ध वाद्यों में तबला एक सर्वउच्च वाद्य, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

सूरी विद्यासागर, पंजाब का इतिहास, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, चण्डीगढ़, 1975

शूक्ल योगमाया, ताल प्रबन्द,हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भार्गव डॉ. अंजना, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, कनिष्क पब्लिशर्ज, नई दिल्ली, 2002

मिश्र डॉ. लाल मणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973

बावरा डॉ. जोगिन्द्र सिंह, भारतीय संगीत की उत्पति एंव विकास, पी.बी.ए.एस पब्लिकशन, जालन्धर, 1994

1 ना. शा., 32.436